IJAER/May-June 2015/Volume-4/Issue-4 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research

हिन्दी जातीय साहित्य का विकास और डॉ. रामविलास शर्मा

डॉ. देवेन्द्र सिंह, व्याख्याता – हिन्दी
महारानी श्रीजया राजकीय महाविद्यालय, भरतपुर (राज0)

हिन्दी साहित्य का कोई व्यवस्थित इतिहास ग्रंथ न लिखने के बावजूद डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्येतिहास के चिंतकों में महत्वपूर्ण स्थान के अधिकारी हैं। उन्होंने भारतीय एवं हिन्दी साहित्येतिहास के सम्बन्ध में अनेक सैद्धांतिक अवधारणाएँ प्रस्तुत करने के साथ–साथ हिन्दी साहित्य के इतिहास का एक व्यवहारिक स्वरूप भी हमारे सामने रखा है। यह बात अलग है कि व्यवस्थित इतिहास ग्रंथ न लिखने के कारण हिन्दी साहित्य का इतिहास उनकी अनेक पुस्तकों में बिखरा हुआ मिलता है। दरअसल उनके इस **'बिखरे हुए हिन्दी साहित्येतिहास'** को एकत्रित कर उसे एक व्यवस्थित आकार देना चुनौती पूर्ण कार्य है। इस हेतु उनकी दृष्टि से हिन्दी साहित्य के विकास और कालविभाजन के स्वरूप को समझना आवष्यक है।

1ण् हिन्दी भाषा का विकास एवं स्वरूप

डॉ॰ रामविलास शर्मा आधुनिक जातीय भाषाओं के साहित्य को जातीय गठन एवं जातीय भाषा के निर्माण के संदर्भ में देखने के पक्षपाती हैं। वे आधुनिक, देषी भाषाओं का उद्‌भव संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंष की श्रृंखला में न मानकर उनके समान्तर ही उनकी उपस्थिति स्वीकार करते हैं। ये प्राचीन जनभाषाएँ समय पाकर सामंती विघटन, व्यापारिक विकास, सांस्कृतिक समन्वय के परिणामस्वरूप अलग–अलग प्रदेषों में अलग–अलग समय पर आधुनिक जातीय भाषाओं के रूप में विकसित हुई हैं तथा कालांतर में समृद्ध साहित्य की वाहक बनी हैं।

हिन्दी साहित्य हिन्दी जाति का साहित्य है। हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास हिन्दी जाति के विकास से अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है। डॉ॰ शर्मा के अनुसार, "जातीय भाषा का विकास ही किन्हीं विषेष परिस्थितियों में होता है। उन्हें पहचाने बिना न भाषा का विकास समझ में आ सकता है, न साहित्य का।"[1] अनेक विद्वान बल्कि कहें कि अधिकांष विद्वान हिन्दी भाषा का विकास अपभ्रंष से मानते हैं जबकि डॉ॰ शर्मा हिन्दी का विकास अतिप्राचीन काल से उपस्थित जनभाषाओं से आधुनिक–हिन्दी का विकास मानते हैं तथा अपभ्रंष भाषा को सामंती भाषा तथा देषी भाषाओं के विकास में बाधक मानते हैं। अपभ्रंष के पोषक सामंतों के विघटन से अपभ्रंष के पतन और देषी भाषाओं के विकास का मार्ग प्रषस्त होता है। इसके अलावा लोक संस्कृति से अलगाव भी अपभ्रंष के पतन का कारण है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ॰

शर्मा **डॉ॰ रामसिंह तोमर** का उद्धृत करते हैं कि "यदि देषी भाषाएँ अपभ्रंष से भिन्न थीं तो लोक संस्कृति का माध्यम अपभ्रंष न हो सकती थीं, ये देषी भाषाएँ ही हो सकती थीं। इन्हीं में दोहा, चौपाई, आल्हा, आख्यान–काव्य तथा गेय पदों की परम्पराओं का विकास हुआ। यदि लोक संस्कृति का माध्यम अपभ्रंष होती तो साहित्य के मंच से उसे कोई शक्ति न हटा पाती।. . . अपभ्रंष साहित्य के रचनाकारों के जो आश्रयदाता थे, उनका युग समाप्त हो रहा था। सामंती शक्तियों के विघटन के साथ अपभ्रंष संरक्षण नष्ट हो गया। इस संरक्षण के नष्ट होने से लोक संस्कृति का रास्ता साफ हो गया।[2]

अपभ्रंष के अपदस्थ होने पर वृहद हिन्दी क्षेत्र में अनेक बोलियों या कहें देषी भाषाओं का विकास संभव हो पाता है। "व्यवहार में पंजाब से बिहार तक बोली जाने वाली सभी भाषाओं को हिन्दी कहा जाता है।"[3] धीरेन्द्र वर्मा हिन्दी प्रदेष के विस्तार और उसकी सीमाओं को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि "पष्चिम में राजपूताने के जैसलमेर राज्य से लेकर पूर्व में बिहार के भागलपुर जिले तक तथा उत्तर में यमुना और सतलज के बीच में अम्बाला नगर से लेकर दक्षिण में मध्य प्रांत के रायपुर तक के, भारत के शेष मध्य भाग से इस प्रकार सहसा विभाग करना सरल नहीं है। साधारणतया यह कहा जा सकता है कि इस सम्पूर्ण भूमि में एक ही भाग–हिन्दुस्तानी–बोली जाति है, यद्यपि लोगों की ठेठ बोलियों के रूप कुछ–कुछ भिन्न अवष्य हैं।"[4] प्रसिद्ध भाषाविद् "डॉ॰ भोलानाथ तिवारी, (कौरवी खड़ी बोली) ब्रजभाषा, हरियाणी, कन्नौजी, अवधी, बधेली, छत्तीसगढ़ी, राजस्थानी, पहाड़ी, भोजपुरी, मगही और मैथिली को हिन्दी की प्रमुख बोलियाँ मानते हैं।"[5] विभिन्न परिस्थितियों के चलते इनमें से ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी और मैथिली में पर्याप्त साहित्य रचना प्रारम्भ हुई थी। कुछ विद्वान विभिन्न आधारों पर इन्हें स्वतंत्र भाषाओं का दर्जा देना चाहते हैं। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** का मानना है कि ये सभी बोलियाँ हिन्दी की जनपदीय बोलियाँ हैं। हिन्दी खड़ी बोली ने ऐतिहासिक और सामाजिक प्रक्रिया के तहत जातीय भाषा का स्वरूप प्राप्त किया है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है कि विभिन्न जनपदीय भाषाओं में से कोई एक जातीय भाषा के रूप में विकसित हो और अन्य का स्थान गौण हो जाये। वे मानते हैं कि, "हर देष में मुख्य भाषा के साथ बोलियाँ भी होती हैं।. . . सांस्कृतिक और राजनीतिक दोनों ही दृष्टियों से वे बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। परन्तु षिक्षा और विज्ञान के प्रसार के लिए यह बिल्कुल आवष्यक नहीं है कि इनके आधार पर नये प्रांत बना दिये जायें।. . . दूसरी तरफ यह भी निर्विवाद सत्य है कि जनपदीय बोलियों से स्वयं हिन्दी को अपने विकास के लिए बहुत बड़ी शक्ति मिलेगी। इस परस्पर सम्बन्ध को समझकर हम हिन्दी और जनपदीय बोलियों के आन्दोलन को एक ही सूत्र में बाँध सकेंगे।"[6] इसके अलावा वे यह भी कहते हैं कि, "हिन्दी की अनेक बोलियों का अस्तित्व यह

साबित नहीं करता है कि हिन्दी हमारी जातीय भाषा नहीं हैं।"[7] वे जनपदीय बोलियों के आन्दोलनों के खतरनाक परिणामों की ओर स्पष्ट चेतावनी देते हुए लिखते हैं कि, "हिन्दी राष्ट्र भाषा तभी बनेगी जब वह जातीय भाषा के रूप में अपने जनपदों में मान्य होगी। जातीय भाषा के रूप में हिन्दी को छिन्न–भिन्न करने के जो भी प्रयत्न किये जाते हैं, उनसे राष्ट्रीयता कमजोर होती है और अंततः लाभ होता है अंग्रेजी को।"[8]

स्पष्ट है कि डॉ॰ शर्मा हिन्दी के नाम पर केवल खड़ी बोली को ही हिन्दी नहीं मानते बल्कि जनपदीय बोलियों को भी उसी भाषा का अंग स्वीकार करते हैं।

लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि जनपदीय बोलियों का कोई महत्व ही नहीं है और न ही इसका यह अर्थ है कि जनपदीय बोलियों को स्वतंत्र भाषा का दर्जा देकर हिन्दी को कमजोर कर दियाा जाए। हिन्दी भाषा के भविष्य की दृष्टि से यह एक सन्तुलित दृष्टिकोण है।

डॉ॰ रामविलास शर्मा का मानना है कि अपभ्रंष भाषा के अपदस्थ होने पर हिन्दी भाषी क्षेत्र की अनेक बोलियों ने स्वतंत्र रूप से विकास किया। यह स्वाभाविक था कि जातीय निर्माण की प्रक्रिया में किसी एक बोली को जातीय भाषा का दायित्व निभाना था। दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप जातीय भाषा का स्थान आज खड़ी बोली हिन्दी के पास है। हम सभी को इसे स्वीकार करना चाहिए। वे इस जातीय भाषा के निर्माण की ऐतिहासिक प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, "ई॰ तेरहवीं सदी में हिन्दी जाति का निर्माण आरम्भ हो चुका है। ब्रज और खड़ी बोली के जनपदों में सामान्य आर्थिक और सांस्कृतिक सम्बन्धों का इतना प्रसार हो गया है कि एक जनपद का कवि दूसरे जनपद की भाषा में कविता करता है और उसे दोनों जनपदों के लोग समझ सकते हैं। . . .हिन्दी जाति के निर्माण में, जनपदों के सांस्कृतिक आदान–प्रदान में ब्रज, अवधी, खड़ी बोली तीनों की महत्वपूर्ण भूमिका थी।"[9]

जातीय भाषा बनने की दौड़ में मैथिली और भोजपुरी पहले से ही नहीं थी। अवधी भाषा भी पिछड़ चुकी थी। ब्रजभाषा अखिल भारतीय स्तर पर पहचान बना चुकी थी लेकिन वह व्यापारों की भाषा न होने से खड़ी बोली की चुनौती को स्वीकार न कर सकी। आर्थिक और राजनैतिक परिस्थितियाँ खड़ी बोली के अनुकूल पड़ रही थी। डॉ॰ रामविलास शर्मा लिखते हैं कि, "हिन्दी का आधार दिल्ली और उसके निकतवर्ती प्रदेषों की बोली–खड़ी बोली बनी, क्योंकि दिल्ली राजनैतिक और आर्थिक जीवन का प्रमुख केन्द्र थी।"[10] खड़ी बोली को जातीय भाषा के रूप में स्थापित करने में अन्य जनपदीय बोलियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। विषेषकर ब्रजभाषा का योगदान अविस्मरणीय है, "सोलहवीं सदी का आगरा विनिमय केन्द्र ही नहीं, बहुत बड़ा उत्पादन केन्द्र भी था। यही कारण है कि दिल्ली और हरियाणा की बोली आगरे में ब्रजभाषा से

प्रभावित होकर अपना आधुनिक रूप प्राप्त कर सकी। . . .इस भाषा को पहले हिन्दी या हिन्दुई कहा जाता था। इसी का नाम रेखता भी था। . . .खड़ी बोली और उर्दू के रूपों में विभाजित होने से पहले दिल्ली और आगरे की भाषा का नाम हिन्दी था।. . . यह हिन्दी आधुनिक हिन्दी प्रदेषों के जनपदों में रहने वालों की जातीय भाषा बनी।"[11]

डॉ॰ रामविलास शर्मा का मानना है कि, "हिन्दी प्रदेष सामन्त वर्ग का गढ़ था इसलिए हिन्दी प्रदेष में देषी भाषाओं को साहित्यक माध्यम बनने से पूर्व हिन्दी की प्राथमिक रचनाएँ हिन्दी प्रदेष से बाहर महाराष्ट्र और दकन में मिलती हैं। क्योंकि सामन्तवर्ग अपभ्रंष का पोषक था और इस अपभ्रंष के दबाव से हिन्दी–भाषी जनता को मुक्ति पाने में देर लगी।[12] वे लिखते हैं कि, "दकनी के रूप में यही 15वीं सदी में साहित्य का माध्यम बन गई थी। उत्तर में फारसी के राजभाषा होने के कारण यहाँ वह साहित्य की भाषा विलम्ब से बनी। फिर भी सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दियों में ऐसा साहित्य काफी है जो इस हिन्दी में लिखा गया था।. . . फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना से पहले जातीय भाषा के रूप में हिन्दी का यथेष्ट प्रचार हो चुका था।"[13]

हिन्दी भाषा के विकास के सम्बन्ध में अभी तक हम सभी तथ्यों का विधिवत अध्ययन नहीं कर सके हैं। यही कारण है कि हम अनेक विरोधाभाषी मतों से भ्रमित होते रहते हैं। डॉ॰ शर्मा का मानना है कि हिन्दी का विकास फोर्ट विलियम कॉलेज और भारतेन्दु से काफी पहले हो चुका था। हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप की जानकारी के लिए उनका प्रस्ताव है कि, "भारतेन्दु कालीन गद्य, उससे पहले का उत्तर और दक्खिन में रचा हुआ गद्य–पद्य, अठाहरवीं और उन्नीसवीं सदियों में प्रकाषित कोष और व्याकरण, ईसाई पादरियों का हिन्दी–उर्दू में लिखा हुआ साहित्य, यह सब एक जगह इकट्ठा होना चाहिए, जहाँ लोग भाषा के विकास का अध्ययन कर सकें।. . . इससे नयी पुरानी चाल की हिन्दी के इतिहास का ज्ञान होगा, हिन्दी भाषी प्रदेष के लोग अपनी जातीय अस्मिता पहचानेंगे।"[14]

2ण्ण् साहित्य की जातीय परम्परा

जातीय गठन के साथ जातीय भाषा का विकास स्वाभाविक रूप से होता है लेकिन जातीय भाषा के निर्माण के साथ ही उस भाषा के साहित्य का प्रारम्भ संभव नहीं हो पाता। क्योंकि कोई भी जातीय भाषा अपनी प्रारम्भिक अवस्था में सम्पर्क की भाषा ही होती है। साहित्यक भाषा के रूप में उसका विकास बहुत बाद में सम्भव हो पाता है। हिन्दी साहित्य के विकास को भी इसी संदर्भ में देखना चाहिए। डॉ॰ रामविलास शर्मा ग्याहरवीं सदी के बाद सामंतवाद के विघटन के परिणाम स्वरूप देषी भाषाओं का विकास

स्वीकार करते हैं। इन्हीं देषी भाषाओं अथवा जनपदीय भाषाओं के साहित्य से ही वे हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ मानते हैं। अपभ्रंष–भाषा–साहित्य को वो अन्य विद्वानों की तरह साहित्य का अंग नहीं मानते।

डॉ॰ रामविलास शर्मा के दृष्टिकोण से हिन्दी जाति की समस्त बोलियों का साहित्य हिन्दी साहित्य के ही अन्तर्गत आता है। उनका विचार है कि, "हम हिन्दी भाषी एक महाजाति हैं। एक महाजाति के अन्तर्गत जितनी भी बोलियों के लोग आते हैं, उन सबका साहित्य एक ही जाति का साहित्य कहलायेगा। हमारी जाति हिन्दी है, हमारी भाषा हिन्दी है, इसलिए हिन्दी क्षेत्र की सभी बोलियों के साहित्य को हम हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत लेते हैं। इसका अर्थ यह नहीं होता कि तुलसी, सूर, कबीर ने आज की हिन्दी में रचनाएँ की हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि इन सब बोलियों में रचा हुआ साहित्य एक ही जाति की सम्पदा है।"[15] वे भले ही हिन्दी की समस्त बोलियों के साहित्य को हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत मानते हैं लेकिन समस्त हिन्दी साहित्य को हिन्दी का जातीय साहित्य नहीं मानते हैं। उनकी दृष्टि में जनहित में लिखा साहित्य ही सच्चे अर्थों में किसी जाति का जातीय साहित्य कहलाने का हकदार है। अर्थात् जन विरोधी साहित्य जातीय साहित्य नहीं हो सकता। इस तरह उनके मतानुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास में जातीय साहित्य को ही महत्वपूर्ण मान उसका मूल्याकंन करना चाहिए।

उनकी इतिहास दृष्टि को समझने के लिए उनकी जातीय साहित्य की अवधारणा की समझ अत्यंत आवष्यक है वे यह मानते थे कि, "प्रत्येक जाति के भीतर दो जातियों का अस्तित्व होता है। दो जातीय संस्कृतियाँ होती हैं। एक जनवादी और समाजवादी संस्कृति तथा दूसरी प्रतिक्रियावादी तथा पुरोहिती संस्कृति।"[16] डॉ॰ रामविलास शर्मा की जातीय चेतना में वर्ग आधार की भूमिका स्पष्ट दिखाई देती है। वे लिखते हैं कि, "जिस समाज में अनेक वर्ण हों, रहन–सहन और व्यवहार के अनेक स्तर हों, उसमें साहित्य की परम्परा भी अनेक होती हैं। मोटे तौर पर जैसे एक दरबारी परम्परा दूसरी गैर दरबारी परम्परा। इसमें जो परम्परा किसी जाति के सांस्कृतिक विकास में सहायक होती है, उसे हम जातीय परम्परा कहते हैं।"[17] स्पष्ट है कि दरबारी परम्परा उनकी जातीय चेतना का हिस्सा नहीं है। लेकिन वे प्रतिक्रियावादी साहित्य अथवा दरबारी साहित्य को पूरी त्याज्य नहीं मानते हैं। यहाँ वे अपने भारतीय मार्क्सवादी साथियों की अपेक्षा उदार और दूरदर्षी दृष्टिकोण रखते हैं। एक तो वे यह मान कर चलते हैं कि, "मानव जाति का इतिहास वर्ग संघर्ष के इतिहास के साथ–साथ वर्ग सहयोग का इतिहास भी है।"[18] दूसरे "अपनी प्रारम्भिक अवस्था में प्रत्येक नई व्यवस्था चाहे वो सामंती हो या पूँजीवादी प्रगतिषील ही होती है।"[19] तीसरे "पुराने साहित्य में वर्ग हित साफ–साफ टकराते दिखाई दें, इसकी सम्भावना कम होती है।"[20] चौथी बात यह है कि, "सभ्यता के

अनेक तत्वों की तरह साहित्य में भी ऐसे तत्व होते हैं जो विरोधी वर्गों के काम में आते हैं।"[21] इसलिए अपना वर्ग विरोधी दिखने वाला साहित्य भी उपयोगी हो सकता है और वह त्याज्य नहीं है। यह बात अलग है कि अपने व्यवहारिक मूल्यांकन के डॉ॰ शर्मा इस उदारता को व्यवहार में पूरी तरह परिणत नहीं कर सके हैं।

यही वह सन्तुलित दृष्टिकोण है जिसके कारण डॉ॰ रामविलास शर्मा एक ओर प्राचीन साहित्य को प्रगतिषील साहित्य परम्परा के लिए महत्वपूर्ण मानकर उसका गंभीरता पूर्वक मूल्यांकन करते हैं तथा दूसरी ओर हिन्दी के जातीय साहित्य में दरबारी साहित्य अर्थात लोक विरोधी साहित्य को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं देते। **'लोक जागरण और हिन्दी साहित्य'** नामक पुस्तक में भी आचार्य शुक्ल के रीतिवाद सम्बन्धी विष्लेषण को स्थान न देना भी इसी दृष्टि का प्रमाण है। वे अपनी भावना को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि, "प्रस्तुत संकलन में रीतिवादी काव्यधारा का परिचय देने वाले अंष नहीं है। अधिकांष पाठक उससे परिचित होंगे। जिस काव्य धारा पर विषेष ध्यान देना है, वह लोक जीवन से सम्बन्ध, विभिन्न मानव सम्बन्धों को प्रतिबिम्बित करने वाली, रीतिमुक्त धारा है, हिन्दी काव्य की सबसे बड़ी उपलब्धि वही है, हिन्दी भाषी भू भाग में सर्वसाधारण की चेतना का सबसे प्रकाषमान रूप इस काव्य में है। यह काव्य हमारी लोक संस्कृति का अभिन्न अंग है।"[22] यहाँ हम उस कारण को भी समझ सकते हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा पूर्णतः सक्षम होने के बावजूद हिन्दी साहित्य का व्यवस्थित इतिहास लिखने में क्यों प्रवृत्त नहीं हो सके, क्यों उन्होंने चयनित मूल्यांकन का मार्ग चुना था।

वास्तविकता यह है कि वे साहित्येतिहास को साहित्य परम्परा के रूप में देखते हैं तथा साहित्य परम्परा में भी उनकी नजर जातीय साहित्य परम्परा पर ही विषेष रूप से रही है। उसे ही वे प्रगतिषील साहित्य परम्परा कहते हैं। इसी संदर्भ में उनके हिन्दी साहित्य के विकास को समझना उचित रहेगा। यह रामविलास शर्मा की साहित्येतिहास दृष्टि का वैषिष्ट्य भी है।

३ण हिन्दी साहित्य का विकास

अन्य विद्वान जहाँ अपभ्रंष साहित्य को हिन्दी साहित्य के विकास का स्रोत मानते हैं वहीं डॉ॰ रामविलास शर्मा हिन्दी साहित्य का विकास प्राचीन जन भाषाओं से मानते हैं तथा अपभ्रंष को हिन्दी की विरासत मानने से इंकार करते हैं। वे हिन्दी साहित्य का विकास अपभ्रंष के विरुद्ध मानते हैं। उनकी मान्यता है कि, "अपभ्रंष साहित्य कुल मिलाकर सामंती रूढ़ियों को प्रतिबिम्बित करने वाला साहित्य है। अपभ्रंष भाषा और साहित्य में लोक भाषा और लोक साहित्य के अनेक तत्व होने के बावजूद वह न तो लोक भाषा है और न लोक साहित्य।"[23] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की मान्यता का विरोध करते हुए

कहते हैं कि, "अपभ्रंष की प्राणधारा परवर्ती साहित्य में प्रवाहित नहीं" नहीं हुई थी। "रीतिवादी साहित्य के लिए यह बात अंषतः सही है किन्तु भक्ति साहित्य की प्राणधारा अपभ्रंष की प्राणधारा से भिन्न है।. . . अपभ्रंष की प्रवृत्ति सामंती है वहीं भक्ति साहित्य की सामंत विरोधी।. . . अपभ्रंष काव्य की रूढ़ियाँ **'वीर गाथा काल'** और रीतिकाल में पुनर्जीवित हुई, **'भक्तिकाल'** के साहित्य में उनका निषेध है।"[24] स्पष्ट है कि डॉ॰ शर्मा हिन्दी साहित्य–परम्परा में अपभ्रंष प्रभावित साहित्य, वीर गाथा साहित्य व रीति साहित्य को महत्व नहीं देना चाहते हैं। लेकिन साहित्येतिहास में गौण प्रवृत्तियों या किसी भी दृष्टि से कमतर समझे जाने वाले साहित्य की उपेक्षा उचित नहीं कही जा सकती है।

हिन्दी साहित्य में दरबारी साहित्य का प्रारम्भ भले ही वीरगाथात्मक रचनाओं से हो गया था लेकिन रामविलास शर्मा के मतानुसार लोक जागरण वाली काव्य धारा का प्रारम्भ विद्यापति से हुआ था। उनकी दृष्टि में "विद्यापति अपभ्रंष साहित्य के अंतिम और देषी भाषाओं के साहित्य के प्रथम महाकवि हैं।"[25]

वे स्पष्ट लिखते हैं कि, "यह कहना अधिक उचित होगा कि उत्तर भारत में जो नवजागरण के साहित्य का प्रसार हुआ, उसके अग्रदूत विद्यापति हैं।. . . नये साहित्य में विद्यापति यथार्थवाद के आदि प्रवर्तकों में हैं।"[26] विद्यापति के बाद वे अमीर खुसरो को महत्वपूर्ण जातीय कवि मानते हैं। खुसरो के सम्बन्ध में उनका मत है कि, "हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में ब्रज, अवध और कुरू इन तीन जनपदों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।. . . खुसरो इन तीनों जनपदों की संस्कृति से परिचित थे। दरबार में रहते हुए भी वह दरबारी से ज्यादा सूफी थे और अनेक सूफियों की तरह लोक संस्कृति से उनका भी गहरा लगाव था।"[27] स्पष्ट है कि वे लोक जागरण के साहित्य का प्रारम्भ विद्यापति और खुसरो से ही मानते हैं। इस युग का अन्य साहित्य उनके लिए उपयोगी नहीं है।

इस लोक जागरण वाली काव्यधारा का अगला और महत्वपूर्ण चरण भक्तिकालीन साहित्य है। डॉ॰ शर्मा इसे हिन्दी साहित्य का चरम विकास मनाते हैं। भक्तिकालीन कवि कबीर सूर, जायसी और तुलसी भारतीय लोक मानस के सच्चे प्रतिनिधि थे। डॉ॰ शर्मा के अनुसार 'सामंतीय शक्तियों के विघटन और व्यापार के विकास के परिणाम स्वरूप शहर के कारीगरों और गाँव के किसानों की सामंत विरोधी चेतना प्रखर हुई। इस नवीन चेतना के प्रमुख और आदि प्रतिनिधि कबीर है।' 'सौन्दर्य और "सौन्दर्य और प्रेम के अन्यतम कवि मलिक मुहम्मद जायसी हैं।' 'सूर और मीरा हमारे राष्ट्रीय गीतकार हैं।' "भारत की बहुसंख्यक पीड़ित किसान जनता की वेदना व आकांक्षा के प्रतिनिधि कवि तुलसीदास हैं।"[28] इन भक्त कवियों का

सामंत विरोधी लोकजागरण का स्वर भारतीय इतिहास की अमूल्य धरोहर होने के साथ–साथ सम्पूर्ण विष्व के लिए प्रतिस्पर्धा का विषय है।

भक्तिकाल में सामंत विरोधी चेतना मुखर रही लेकिन डॉ॰ मैनेजर पांडेय मानते हैं कि "सौदगरी पूँजीवादी से सामंती विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। आवष्यक नहीं कि वह सफल हो जाए।. . . भारत में इससे सामंती ढाँचा कमजोर तो हुआ लेकिन वह पुनः पुनर्जीवित हुआ। यही कारण है कि भक्तिकाल के बाद रीतिकाल आया।"[29] डॉ॰ रामविलास शर्मा भी मानते है कि "सूर तुलसी के युग के बाद विघटित सामंतवाद ने किसी हद तक अपनी स्थिति सँभाली इसका परिणाम था, देव–बिहारी–मतिराम की काव्य परम्परा और उसका विकृत रूप था, नायिका भेद, अतिषय अलंकरण, चमत्कार प्रदर्षन। भूषण का काव्य एक सीमा तक इस रीतिवादी घेरे को तोड़कर बाहर निकलता है।"[30]

डॉ॰ रामविलास शर्मा उर्दू साहित्य को हिन्दी जाति का साहित्य मानते हैं तथा उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्थान देने के पक्षधर भी हैं क्योंकि इससे रीतिकाल और आधुनिकाल की मध्य की साहित्य परम्परा को खोजने में की मध्य की साहित्य परम्परा को खोजने में सहायता मिलती है। वे मानते हैं कि "अठाहरवीं सदी के अंतिम चरण में, जिसे नवाबी जमाना भी कहते हैं, मुगल साम्राज्य के विघटन काल में, राजभाषा फारसी के प्रभाव से हिन्दी के एक नए रूप का चलन हुआ जो आगे उर्दू कहलाया। जिसे औरंगजेब और अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक भाषा बनाने का पूरा प्रयास किया था। इस उर्दू नाम की विषिष्ट बोली के सबसे बड़े कवि गालिब हैं। उनकी उक्तियों को कहावत के रूप में स्वीकार करना लोकप्रियता का प्रमाण है।"[31]

हिन्दी साहित्येतिहास ग्रंथों में आधुनिक काल के नाम से प्रचलित युग डॉ॰ रामविलास शर्मा का सर्वाधिक प्रिय युग रहा है। उनकी उल्लेखनीय पुस्तकें और समकालीन चिन्ताएँ इसी युग से सम्बन्धित हैं। उन्होंने भारतेन्दु हरिष्चन्द्र, महावीर प्रसाद द्विवेगी और निराला को युग–प्रतिनिधि साहित्यकार मानते हुए हिन्दी साहित्य के इस युग का मूल्यांकन किया है। जिसे वे आधुनिक काल का उत्तरार्ध तथा नवजागरण के नाम से रेखांकित करते हैं। वे मानते हैं कि उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में भारतेन्दु हरिष्चन्द्र ने नये हिन्दी साहित्य का विकास आरम्भ किया। उन्होंने न केवल गद्य–पद्य की सभी विधाओं का विकास किया बल्कि जनता में साम्राज्य विरोधी भावना का भी विकास किया। उन्होंने अपने साथ अनेक लेखकों को भी तैयार किया। भारतेन्दु हरिष्चन्द्र के वाद 19वीं सदी के अंत में तथा 20वीं सदी के प्रारम्भ में इस कार्य का भार महावीर प्रसाद द्विवेगी ने संभाला। उनका अधिकांष कार्य **'सरस्वती'** इस युग का सच्चा दर्पण है।

आचार्य द्विवेगी ने मैथिलीषरण गुप्त जैसे कवि की पहचान कर उनके और अन्य युगीन कवियों के माध्यम से खड़ी बोली को कविता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित किया तथा सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष किया। इसलिए आचार्य द्विवेगी युग निर्माता साहित्यकार सिद्ध हुए। उन्नीस सौ बीस से चालीस का युग प्रेमचन्द, रामचन्द शुक्ल, जयषंकर प्रसाद तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी **'निराला'** जैसे समर्थ साहित्यकारों के कारण चरम विकास का युग है। इन्होंने न केवल साहित्यिक, सामाजिक रूढ़ियों पर निर्णायक प्रहार किये बल्कि अपनी राजनीतिक जागरूकता का परिचय देकर साहित्यकारों के दायित्वों को गम्भीर स्तर प्रदान किया। साम्राज्य विरोधी भावना इस युग का प्राण है। साहित्यिक स्तर पर कलात्मक श्रेष्ठता में यह युग अपना प्रतिमान आप है। इस युग की रचनाओं में सांस्कृतिक समृद्धता के दर्षन पग–पग पर किये जा सकते हैं। हिन्दी साहित्य में यह युग छायावाद के नाम से जाना जाता है। इस तरह 19वीं सदी के मध्य से 20वीं सदी के मध्य तक का युग डॉ॰ शर्मा के मतानुसार हिन्दी नवजागरण काल है, जो कि भारतीय नवजागरण का महत्वपूर्ण और प्रतिनिधि अंग है, जिसका मूल स्वर साम्राज्यवाद विरोधी माना जाना चाहिए।

छायावााद के बाद हिन्दी कविता को अल्पजीवी आंदोलनों में बाँटकर देखने की परम्परा रही है। इससे एक ओर कविता की मुख्य धारा की पहचान करना एक दुष्कर कार्य हो जाता है वहीं दूसरी ओर आंदोलनों की विष्वसनीयता भी कम हो जाती है। **डॉ॰ रामविलास शर्मा** यहाँ भी कविता को मुख्यतः दो वर्गों में बाँटकर देखते हैं। पहला वर्ग है प्रगतिषील कविता का और दूसरा वर्ग है प्रगतिविरोधी कविता का। प्रगतिषील कविता आम जनता की मुक्ति के लिए संघर्ष रत है वहीं उनकी दृष्टि में प्रगतिविरोधी कविता आधुनिकता, वैयक्तिता और पूँजीवादी अवधारणाओं के जाल में उलझकर आम आदमी की चिन्ताओं से मुक्त है। रामधारी सिंह दिनकर, षिवमंगल सिंह सुमन, केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन त्रिलोचन एवं शमषेर आदि प्रगतिषील कविता के प्रतिनिधि कवि हैं दूसरी ओर कवि प्रगतिविरोधी वैयक्तिक काव्यधारा के कवियों में वे हीरानंद सच्चिदानंद वात्सायन **'अज्ञेय'** धर्मवीर भारती, विजयदेव नारायण साही व लक्ष्मीकांत वर्मा आदि को प्रमुख मानते हैं। समकालीन कविता के नाम से जानी जाने वाली कविता से डॉ॰ रामविलास शर्मा लगभग पूरी तरह अलग ही रहे हैं।

डॉ॰ रामविलास प्रेमचन्द के साहित्य को विषेषकर उपन्यासों को गद्यकारो–उपन्यासकारों के लिए आदर्ष मानते हैं। बाद के उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर व वृंदावन लाल वर्मा को प्रेमचन्द का प्रतिनिधि उपन्यासकार मानते हैं। वे यथार्थवादी धारा को उपन्यास की मुख्य धारा मानते हैं। यथार्थवाद के नाम पर या वैयक्तिकता के नाम पर अष्लीलता उन्हें स्वीकार नहीं थी। इसलिए जैनेन्द्र, अज्ञेय के अलावा मार्क्सवादी

लेखक रांगेय राघव और यषपाल की भी उन्होंने भरपूर आलोचना की है। उनकी दृष्टि में गद्य की एक धारा है जो सामाजिक समस्याओं को यथार्थवादी दृष्टि के सामने रख रही है। एक दूसरे धारा है जो उपन्यासों में मनोविज्ञान या प्रकृतवाद के नाम से वैयक्तिक समस्याओं के नाम पर अष्लीलता को बढ़ावा देकर पाठकों को भटकाने का काम कर रही है।

इस तरह हम देखते हैं कि डॉ॰ रामविलास शर्मा लगभग सम्पूर्ण साहित्येतिहास हिन्दी साहित्य परम्परा का अवगाहन कर जनता के पक्षधर साहित्य की खरी पहचान करने के साथ–साथ उन साहित्यकारों के वास्तविक अवदान को जनता के सामने रख, हिन्दी साहित्येतिहास में उनका स्थान व महत्व निर्धारित करते हैं। दूसरी और साहित्य के नाम पर जन विरोधी प्रवृत्तियों एवं साहित्यकारों की पहचान कर उनका असली चेहरा जनता के सामने रखते हैं। यह बात अलग है कि अतिरेक के चलते दोनों ओर स्वयं उनमें भी भटकाव देखा जा सकता है। लेकिन यह भटकाव उनके सम्पूर्ण कार्य का अल्पांष ही है। लोकहित, राष्ट्रहित और जातीयहित की कसौटी पर उन्होंने हिन्दी साहित्य ही नहीं सम्पूर्ण भारतीय साहित्य की पहचान की है। उनके महत्व को हम इस आधार पर समझ सकते हैं कि आज हिन्दी अपने प्रमुख साहित्यकारों को उसी रूप में जानता है जिस रूप में उन्हें डॉ॰ रामविलास शर्मा ने जाना था। वे हिन्दी साहित्य की प्रगतिषील परम्परा के खरे पारखी हैं। उनके इस योगदान को डॉ॰ मैनेजर पांडेय ठीक तरह से पहचानते हुए लिखते हैं कि, "हिन्दी साहित्य की प्रगतिषील परम्परा की व्यापक स्वीकृति और पाठकों के साहित्य विवेक के निर्माण का काम यों ही सरलता से नहीं हो गया है। रामविलास शर्मा ने हिन्दी साहित्य के इतिहास से सम्बन्धित अपनी अनेक मान्याताओं के लिए लगातार कठिन वैचारिक संघर्ष करके इस काम में दुर्लभ सफलता प्राप्त की है।"[32]

संदर्भ सूची

1 रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 16

2 रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 128

3 रामविलास शर्मा – हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग–3, पृ॰ 268

4 धीरेन्द्र वर्मा – हिन्दी राष्ट्र या सूबा हिन्दुस्तान, पृ॰ 41

[5] भोलानाथ तिवारी – हिन्दी भाषा, पृ॰ 28

[6] रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य, पृ॰ 41

[7] रामविलास शर्मा – मार्क्सवाद और प्रगतिषील साहित्य, पृ॰ 258

[8] रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 24

[9] रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 28–29

[10] रामविलास शर्मा – भाषा और समाज, पृ॰ 281–282

[11] रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 50

[12] भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ॰ 111

[13] भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ॰ 51

[14] भारतेन्दु युग और हिन्दी की विकास परम्परा, डॉ॰ रामविलास शर्मा, पृ॰ 140

[15] रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य के इतिहास की समस्याएँ, पृ॰ 362

[16] लेनिन उद्धृत मैनेजर पांडेय साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 180

[17] संकल्पः समीक्षा दषक, पृ॰ 206–207 उद्धृत रामचन्द्र तिवारी–कृति चिंतन और मूल्यांकन संदर्भ पृ॰ 61

[18] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 10

[19] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 10

[20] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 11

[21] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 11

[22] सम्पा॰ रामविलास शर्मा – लोक जागरण और हिन्दी साहित्य, पृ॰ 13

[23] रामविलास शर्मा – हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 35

[24] रामविलास शर्मा, हिन्दी जाति का साहित्य, पृ॰ 35

[25] रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 150

[26] रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 151

[27] रामविलास शर्मा – भारतीय साहित्य की भूमिका, पृ॰ 164

[28] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 21–22

[29] मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 175

[30] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 23

[31] रामविलास शर्मा – परम्परा का मूल्यांकन, पृ॰ 24–25

[32] मैनेजर पांडेय – साहित्य और इतिहास दृष्टि, पृ॰ 204–205